इकाई 24 साम्राज्यवादी प्रतिद्वंद्विता

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- साम्राज्यवाद के विभिन्न सिद्धांतों के बारे में जान पाएंगे;
- कई यूरोपीय शक्तियों के उदय की जानकारी हासिल कर सकेंगे जो पृथ्वी के बंटवारे में अपना भी हिस्सा चाहते थे; और
- प्रथम विश्व युद्ध के पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

24.1 प्रस्तावना

अभी तक आप उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दुनिया के कोने-कोने में उदित होने वाले उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की जानकारी हासिल कर रहे थे। इस इकाई में अब हम कुछ सैद्धांतिक पक्षों की चर्चा करेंगे और यह भी जानने की कोशिश करेंगे कि इन अवधारणाओं के बारे में विद्वान क्या सोचते हैं। उनके द्वारा बनाए गए विभिन्न सिद्धांतों की चर्चा की जाएगी। इसके साथ ही साथ इस इकाई में हम यूरोप की विभिन्न शक्तियों की आपसी प्रतिस्पर्धा और विश्व मंच पर सर्वोच्चता हासिल करने के लिए उनके द्वारा किए जा रहे प्रयत्नों की भी जानकारी हासिल करेंगे। उस समय तक कोई भी ऐसी शक्ति नहीं थी जिसे महाशक्ति का दर्जा दिया जा सके। इसलिए देशों ने संधियों के जरिए अपना अलग-अलग गुट बनाया जिसके परिणामस्वरूप अन्तत: 1914 में विश्व युद्ध छिड़ गया।

24.2 साम्राज्यवाद के सिद्धांत

जिस समय ये प्रतिस्पर्धाएं चल रही थीं उस समय अर्थशास्त्री और इतिहासकार साम्राज्यवाद की परिघटना को समझने का प्रयत्न कर रहे थे। उस समय इस शताब्दी के आरंभ में सभी प्रमुख बुद्धिजीवियों पर मार्क्सवादी सिद्धांत का प्रभाव था इसलिए वे स्वाभाविक रूप से साम्राज्यवाद के विकास की आर्थिक व्याख्या ढूंढ रहे थे। कार्ल मार्क्स ने स्वयं साम्राज्यवाद का सिद्धांत विकसित नहीं किया परंतु पूंजीवादी उत्पादन के अपने तरीके के विश्लेषण में उन्होंने इसकी ओर पर्याप्त इशारा किया है। अपनी पुस्तक **कैपिटल** में मार्क्स ने बताया है कि पूंजीवादी उत्पादन पद्धति मजदूरों के शोषण पर आधारित है। मजदूरों से प्राप्त अधिशेष से बनी वस्तुओं के लिए बाजार की खोज की गई। जे.ए. हॉब्सन ने अपनी पुस्तक **इम्पीरियलिज्म** (1902) में पहली बार इस विषय को विस्तार से सामने रखा है। हॉब्सन एक अंग्रेज अर्थशास्त्री था जो शुद्ध तौर पर मार्क्सवादी

नहीं था। इंग्लैंड की राजनीति में वह उस विचारधारा का अनुसरण करता था जहां उदारवादी राजनीति लेबर में सम्मिश्रित हो जाती थी। बाद में साम्राज्यवादी संबंधी उसका विचार लेबर पार्टी का आधिकारिक मत बन गया। उसने दिखाया कि जिन देशों में पूंजीवाद का विकास हुआ था वहां किस प्रकार राष्ट्रीय आय का असमान वितरण हुआ था। कम आय वाले लोगों की संख्या बहुत ज्यादा थी और इसका कारण यह था कि उनमें धन का समान वितरण नहीं हो रहा था। यदि धन का समान वितरण होता तो संख्या इतनी ज्यादा न होती (यदि राष्ट्रीय आय राष्ट्र के जनता के बीच समान रूप से वितरित कर दी जाती) पूंजीवादियों ने बहुत जल्द ही यह महसूस किया कि कम आय के कारण वे अपना माल अपने ही देश में नहीं बेच सकते थे। इसके बाद वे अन्य यूरोपीय देशों में बाजार ढूंढने लगे। परंतु वे देश भी औद्योगीकृत हो गए और वहां उन्हें प्रतियोगिता का सामना करना पड़ा। परिणामस्वरूप वे उन देशों की ओर उन्मुख होंगे जिनके पास अपना कोई उद्योग नहीं था और जो अपनी रक्षा खुद नहीं कर सकते थे। हॉब्सन के अनुसार साम्राज्यवाद के विस्तार के पीछे पूंजीवादियों द्वारा ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाना प्रेरक शक्ति थी। निवेश और पुनर्निवेश करने के बाद पूंजीपतियों ने पाया कि अपने ही देश में वे मुनाफा नहीं कमा पाएंगे इसलिए वे मजबूर होकर दूसरी जगह निवेश करने का प्रयत्न करेंगे। अन्त में निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए हॉब्सन ने कहा कि साम्राज्यवाद को जन्म देना पूंजीवाद की प्रकृति है।

यह पाया गया कि साम्राज्यवाद विकसित पूंजीवाद की एक विशेषता थी। विकसित या बाद के पूंजीवाद की परिघटना के अनेक विश्लेषण किए गए। कुछ विश्लेषकों ने दावा किया कि यह पूंजीवाद का अन्तिम और सर्वाधिक पतनशील चरण है। साम्राज्यवाद के युग के आगमन के साथ पूंजीवाद की प्रगतिशील भूमिका समाप्त हो गई थी। विएना के एक बैंकर और पेशेवर अर्थशास्त्री आर. हिल्फर डिंग ने साम्राज्यवाद का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत स्थापित किया। उनकी पुस्तक **दास फाइनेंज कैपिटल** (वित्त पूंजी) 1910 में प्रकाशित हुई। इस समय तक औद्योगिक उत्पादन के मामले में संयुक्त राज्य अमेरिका और जर्मनी ब्रिटेन को पीछे छोड़ चुके थे। हिल्फर डिंग ने पाया कि इन दोनों देशों में औद्योगिक पूंजी को फैलाने और उस पर नियंत्रण स्थापित करने में बैंक (जो वित्त पूंजी का प्रतिनिधित्व करते थे) अग्रणी भूमिका अदा कर रहे हैं। हालांकि ब्रिटिश बैंक इस प्रकार की कोई भूमिका नहीं अदा कर रहे थे। परंतु पूरे औद्योगिक विश्व में वित्त और औद्योगिक पूंजीवाद के आपस में मिलने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। इससे एकाधिकार की परिस्थितियां बनीं। हिल्फर डिंग के अनुसार एकाधिकार पूंजीवादियों ने साम्राज्यवादी विस्तार को प्राथमिकता दी क्योंकि इससे उन्हें उन नए क्षेत्रों पर नियंत्रण का अधिकार मिलता जहां से वे कच्चा माल ला सकते थे। सुरक्षित पूंजी निवेश कर सकते थे और अपने उत्पादन के लिए बाजार सुनिश्चित कर सकते थे।

हिल्फर डिंग के अनुसार वित्त पूंजी के लिए एक मजबूत राज्य की आवश्यकता होती है जो विस्तार की नीति अपना सके और नए उपनिवेश हासिल कर सके। इसके लिए मुक्त व्यापार के सिद्धांत को छोड़ना जरूरी था जिसकी शुरुआत ब्रिटेन ने की थी। धीरे-धीरे विभिन्न राष्ट्रों के बीच एकाधिकार को लेकर टकराव शुरु हुआ। हालांकि इन राष्ट्रों के बीच एकाधिकारों को लेकर संधि और समझौता हो सकता था तथा इसके आधार पर वे सारी दुनिया को आपस में बांट सकते थे। परंतु इसे अन्तिम समझौता नहीं समझना चाहिए क्योंकि यह अस्थाई होगा और मौका मिलते ही कोई राष्ट्र अपने एकाधिकार क्षेत्र को बढ़ाने की कोशिश कर सकता था। इसी मानोवृत्ति के कारण बड़े राष्ट्र राज्यों की आर्थिक प्रतिस्पर्धा ने अन्ततः युद्ध को जन्म दिया। हालांकि यह इस कहानी का नकारात्मक पक्ष है। इसके अलावा हिल्फर डिंग ने एकाधिकार पूंजी की सकारात्मक भूमिका का भी उल्लेख किया है। उनके अनुसार :

> नए क्षेत्रों में पुराने सामाजिक संबंधों को पूरी तरह बदल दिया गया। इन राष्ट्रों में हजारों सालों से चली आ रही कृषि प्रथा को भी परिवर्तित किया गया ....
> ... स्वयं पूंजीवाद ने धीरे-धीरे शोषित जनता को उनकी अपनी स्वतंत्रता के हथियार दिए और तरीके बताए।

इस प्रकार की समझ स्पष्ट रूप से मार्क्स के पूंजीवाद की पुनरुत्पादन भूमिका की गलत समझ से पैदा हुई थी। भारत के दादा भाई नौरोजी और लैटिन अमेरिका के आन्द्रे गुंडर फ्रैंक ने उपनिवेशों पर साम्राज्यवाद के नकारात्मक प्रभाव का अध्ययन करते हुए इस समझ का जमकर विरोध किया।

रोजा लक्जेमबर्ग साम्राज्यवाद के एक बड़ी सिद्धांतकार थीं। उन्होंने 1913 में **एक्युमूलेशन ऑफ कैपिटल**

नामक एक पुस्तक लिखी थी। उन्होंने उस प्रक्रिया का उल्लेख किया था जिसके तहत विकसित शक्तियों ने अभी तक विश्व के बचे हुए गैर पूंजीवादी बाजारों पर नियंत्रण स्थापित किया और उन्हें और भी गरीब बना दिया। उन्होंने बताया कि अल्प विकसित गैर यूरोपीय देशों में पूंजी के निर्यात से स्थानीय औद्योगिक विकास नहीं हो पाता। पूरी दुनिया में एक कृत्रिम श्रम विभाजन हो जाता था जिसमें अल्प विकसित देश हमेशा के लिए प्राथमिक उत्पादक बनने को बाध्य होते थे। रोजा लक्जेमबर्ग हिल्फर डिंग की इस आशंका से सहमत थीं कि राष्ट्रवादी आर्थिक प्रतिस्पर्धाओं से युद्ध होना अवश्यंभावी था।

इस विचार को रूसी बॉलशेविक पार्टी के नेता वी.आई.लेनिन ने बड़ी ही स्पष्टता से सामने रखा। उन्होंने ज्यूरिख में **इम्पेरियलिज्म द हाइएस्ट स्टेज ऑफ कैपिटलिज्म** की रचना की। हॉब्सन के ही समान उन्होंने पूंजी के निर्यात के कारणों की व्याख्या की:

> जबतक पूंजीवाद पूंजीवाद रहता है तब तक अधिशेष पूंजी का उपयोग कभी भी जनता का जीवन स्तर उठाने के लिए नहीं किया जा सकेगा क्योंकि इससे पूंजीवादियों के मुनाफे में कमी होगी; इसके बदले इसका उपयोग बाहर पूंजी भेजकर मुनाफा बढ़ाने के लिए किया जाएगा। खासतौर पर यह पूंजी निर्यात पिछड़े देशों में होगा। पूंजी के निर्यात की जरूरत इसलिए पड़ी क्योंकि कुछ देशों में पूंजीवाद अपरिपक्व हो गया था और कृषि के पिछड़ेपन और जनता की गरीबी के कारण पूंजी के लाभदायक निवेश के अवसर उपलब्ध नहीं थे।

लेनिन की पुस्तक में यह प्रतिपादित किया गया है कि दुनिया के बंटवारे के लिए तथा उपनिवेशों, प्रभाव क्षेत्रों तथा वित्त पूंजी के वितरण और पुनर्वितरण के लिए ही प्रथम विश्व युद्ध लड़ा गया था और यह एक साम्राज्यवादी युद्ध था।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ में साम्राज्यवाद के सिद्धांतकार इन्हीं आधारभूत मुद्दों पर बल दे रहे थे। हालांकि अधिक से अधिक मुनाफा कमाने के लिए अल्प विकसित देशों को पूंजी के निर्यात की अवधारणा को उस समय चुनौती दी गई जिस समय यह पाया गया कि वास्तविकता में औद्योगिक देश अपनी अधिकांश अधिशेष पूंजी अल्प विकसित दुनिया को नहीं बल्कि अधिक औद्योगिक क्षेत्रों को निर्यात कर रहे थे। ब्रिटेन पर यह बात खासतौर पर लागू होती थी। 1914 के पहले ब्रिटिश पूंजी निर्यात का 20 % ही भारत सहित सभी ब्रिटिश उपनिवेशों में निवेशित किया गया था। प्रमुख निवेश खासतौर पर यूरोप और उत्तरी अमेरिका के अन्य पूंजीवादी देशों में किया गया था। 1914 के पहले और पुन: दो विश्व युद्धों के बीच का कम से कम तीन चौथाई हिस्सा सरकारी गारंटी प्राप्त सार्वजनिक क्षेत्रों को दे दिया गया। इसके अलावा बढ़ती एकाधिकार प्रवृत्तियों के बारे में हिल्फर डिंग का मत जर्मनी पर तो सटीक बैठा परंतु ब्रिटेन में 1920 के दशक से पहले एकाधिकार प्रतिष्ठानों के उदय की गति बहुत धीमी थी और फिर कम से कम 1914 तक दुनिया में अधिकांश विदेशी पूंजी ब्रिटेन की थी और अन्तत: यह देखा गया कि उपनिवेशों का अनौद्योगीकरण दीर्घावधि में साम्राज्यवादी ताकतों के लिए अलाभकारी सिद्ध हुआ। औपनिवेशिक जनता की गरीबी के कारण ब्रिटिश उद्योगों को अपना उत्पादन कम करना पड़ा जिसके कारण ब्रिटेन में बेरोजगारी तेजी से बढ़ी। वस्तुत: उत्तरी अमेरिका में यूरोपीय बस्तियों और यूरोपीय देशों को किए गए निर्यात से ज्यादा मुनाफा हुआ जहां ब्रिटेन के माल के लिए बाजार फैल रहा था।

1929 की विकट मंदी के बाद साम्राज्यवाद संबंधी लेखन में एक नई प्रवृत्ति उभरी। 1931 में जोसेफ स्कमपीटर की पुस्तक **इम्पेरियलिज्म ऐंड सोशल** क्लासेज प्रकाशित हुई। अपने आरंभिक वर्षों में स्कमपीटर जर्मनी में रहते थे और वहीं अपना लेखन कार्य किया करते थे। इसके बाद वे संयुक्त राज्य अमेरिका चले गए और वहां उन्होंने अपना लेखन कार्य अंग्रेजी में करना शुरु किया। वे जर्मनी के जुंकर वर्ग से बहुत प्रभावित थे। जुंकर एक सामंती भूमिपति का वर्ग था जिसने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के आरंभ में जर्मनी के राजनैतिक और आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उन्होंने यह भी बताया कि ब्रिटेन द्वारा उत्तरी अमेरिका में साम्राज्य की स्थापना में सामंती कुलीनतंत्र का हाथ था। इसके आधार पर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि पूंजीवाद और साम्राज्यवाद दो अलग-अलग परिघटनाएं थी। उनके अनुसार साम्राज्यवाद का जन्म पूर्व-पंजीवादी सामाजिक और राजनैतिक ताकतों के हाथों हुआ था। यह एक तरह से

पीछे की ओर लौटना था। दूसरी ओर पूंजीवाद ने नए प्रयोग किए और विभिन्न तरीकों से उत्पादन के विभिन्न साधनों का विकास किया। पूंजीवाद का तर्क था कि वह मानव शक्ति का सकारात्मक उत्पादन कार्य में प्रयोग कर रहा था । दूसरी ओर युद्ध में मनुष्य की शक्ति का गैर उत्पादक प्रक्रियाओं के लिए प्रयोग किया गया। पूंजीवाद के लिए राज्य का विस्तार करना आवश्यक नहीं था; राज्य विस्तार किए बिना भी आर्थिक विकास प्राप्त किया जा सकता था।

तीस वर्षों बाद कैम्ब्रिज इतिहासकार जैक गैलेघर और आर.ई.रॉबिन्सन ने *अफ्रीका ऐंड द विक्टोरिएन्स* नामक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने इस धारणा का विरोध किया कि पूंजीवाद साम्राज्यवाद को जन्म देता है। उनके अनुसार साम्राज्यवाद यूरोपीय शक्तियों की राजनीति की देन था जो एशिया और अफ्रीका के देशों के लिए उनके द्वारा अपनाई गई आपसी अविश्वास की नीति में दिखाई देता था। कभी-कभी आपस में समझौता करके वे किसी क्षेत्र पर आधिपत्य न जमाकर उसे आपस में बांट लेने पर भी सहमत हो जाते थे जैसा कि उन्होंने चीन में किया था। यूरोपीय शक्तियां आपस में लड़ती झगड़ती रहती थीं और खाली स्थानों पर कब्जा जमाने के लिए इस प्रकार होड़ मचाया करती थीं ताकि कोई दूसरा प्रतिद्वंद्वी उस पर कब्जा न कर बैठे या उसकी स्थिति वहां मजबूत न हो सके (स्पष्ट है कि शीत युद्ध के अनुभव ने इन लेखकों को काफी प्रभावित किया था) । गैलेघर और रॉबिनसन ने बार-बार यह स्थापित करने की कोशिश की कि पूंजीवाद के आर्थिक कारण साम्राज्य निर्माण में किसी प्रकार की भूमिका अदा नहीं करते थे। उन्होंने तर्क दिया कि ब्रिटिश मंत्रिमंडल में किसी भी समय कोई व्यापारी इसका सदस्य नहीं रहा। कुलीनतंत्र ने हमेशा इंग्लैंड पर राज्य किया और उनकी व्यापार में कोई रुचि नहीं थी। गैलेघर और रोबिनसन का मत निश्चित रूप से होशियारी से अपने तर्क को साबित करने का प्रयास था। ब्रिटिश मंत्रिमंडल में कभी कोई व्यापारी सदस्य नहीं था, यह कहकर वे कुछ भी साबित नहीं कर सके। व्यापारिक हित हमेशा अप्रत्यक्ष रूप से सक्रिय रहते थे और व्यापारिक दबाव हमेशा बना रहता जो विभिन्न गुटों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से किसी नीति को प्रभावित करते थे। इसके अलावा इस प्रकार के विश्लेषण में केवल साम्राज्यवाद की प्रक्रिया पर ध्यान दिया गया, उसके कारणों पर नहीं।

24.3 भू-मंडल पर आधिपत्य की होड़

अब हम यूरोप में बड़ी शक्तियों के बीच होने वाली प्रतिस्पर्धाओं पर विचार करेंगे जिसकी परिणति अन्ततः प्रथम विश्व युद्ध में हुई। हम 1870 से लेकर 1914 में प्रथम विश्व युद्ध के छिड़ने तक की अवधि पर विचार करने जा रहे हैं। यह यूरोप के इतिहास का एक महत्वपूर्ण दौर था। उस दौरान बिस्मार्क की कूटनीति सामने आई। इसके अलावा इस युग का खास महत्व इसलिए भी है क्योंकि इस समय प्रतिरक्षात्मक संधियों की एक अलग ढंग की व्यवस्था शुरु हुई जिसमें सभी यूरोपीय शक्तियां शामिल हुईं ताकि एक दूसरे को रोका जा सके और प्रत्यक्ष युद्ध से बचा जा सके।

1870 के फ्रांसीसी-प्रशा युद्ध में फ्रांस की हार और बाद में 1871 में फ्रैंकफर्ट शांति समझौते के बाद नई परिस्थितियां पैदा हुईं। फ्रैंकफर्ट की संधि के अन्तर्गत फ्रांस को हरजाने के तौर पर 200 मिलियन पाउंड अदा करना था और रकम दिए जाने तक 30,000 जर्मन सैनिकों को पेरिस में रहना था।

किसी ने यह सोचा भी नहीं था कि फ्रांस इस युद्ध में हार जाएगा। इस युद्ध के बाद बिस्मार्क के नेतृत्व में जर्मनी की प्रतिष्ठा काफी बढ़ गई थी। निश्चित रूप से अगले 20 वर्षों तक प्रशा की कूटनीति यूरोप की रणनीति पर हावी रही। अगाथा रैम के अनुसार बिस्मार्क ने "बड़ी यूरोपीय संधियों की व्यवस्था" की थी।

> "अन्तरराष्ट्रीय नियंत्रण और संतुलन की इस उल्लेखनीय व्यवस्था के कारण लोगों के बीच लंबे समय तक शांति कायम रही। परंतु बाद में इसी के कारण मनमुटाव भी बढ़ा। इस व्यवस्था में प्रतिस्पर्धावश संधि की जाती थी पर कोई आम सहमति नहीं बनती थी। यह शक्ति-संतुलन था शक्ति-सहमति नहीं। जैसे ही कोई गुट मजबूत होने लगता था तो उन राज्यों के लिए जो उस गुट से बाहर थे, ,खतरा बढ़ जाता था और अपने आप इसके खिलाफ गुटबंदी होने लगती थी। प्रतिस्पर्धापूर्ण

संधियों के कारण अस्त्रों की भी होड़ लगी और दो विरोधी गुटों के बीच की घृणा और भय की परिणति युद्ध में हुई।''

ये 'गुटबंदियां' और 'विरोधी गुटबंदियां' क्या थीं ? 'प्रतिस्पर्धायुक्त संधियां' कौन-कौन सी थीं और इन्होंने अन्ततः टकराव का रास्ता कैसे प्रशस्त किया ? इस अवधि में यूरोपीय देशों की अर्थव्यवस्था पर गौर करने से बात स्पष्ट हो जाती है। 1870 तक जर्मन अर्थव्यवस्था ब्रिटेन से काफी पीछे थी परंतु अब प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह लोहे या इस्पात या क्षार का उत्पादन हो, उसने ब्रिटेन को पीछे छोड़ दिया। जर्मनी की बड़ी औद्योगिक इकाइयों को बड़े पैमाने पर मशीनीकृत करने की जरूरत थी। फ्रांसीसी पद्धति के अंतर्गत औद्योगीकरण काफी अलग तरह का था। डेविड लेंस के अनुसार फ्रांस का औद्योगीकरण "दबा हुआ औद्योगीकरण था", एक नपी-तुली और सोची समझी हुई प्रगति थी और उन लोगों ने जो फ्रांसीसी और जर्मन अर्थव्यवस्थाओं के बीच असमानता को देखकर स्तब्ध थे, इस धीमी प्रगति पर चेतावनी व्यक्त की। इटली, हंगरी तथा रूस ने नई प्रौद्योगिकी को अपनाया पर आर्थिक स्तर पर यह उन्नति उस पिछड़ेपन को दूर नहीं कर सकी जो अर्थव्यवस्था की अनेक इकाइयों में निहित थी।

ऊपर यूरोप के जिन देशों का उल्लेख हुआ है उनमें अलग-अलग गति से औद्योगिक प्रगति हुई थी। इस औद्योगिक प्रगति और दुनिया पर आधिपत्य जमाने में उसके महत्व के बीच संबंध स्थापित करना कठिन है। परंतु जर्मनी के मामले में यह कहा जा सकता है कि 1890 तक जर्मनी अपने आर्थिक बलबूते पर ही पूरे यूरोप पर छाया रहा।

जर्मनी की बढ़ती ताकत के साथ-साथ इस अवधि में रूस का भी विस्तार हुआ। औटोमन साम्राज्य के कमजोर होने और बालकन के राज्यों की राष्ट्रीय आकांक्षाओं के मजबूत होने पर रूस अपने आपको रोक नहीं सका। औटोमन साम्राज्य में स्लाव जातीयता के लोग भी रहते थे इसलिए उनका रूस के साथ एक मजबूत जातीय जुड़ाव था। इसलिए रूस ने विभिन्न बालकन समुदायों, खासकर रूमेनियाई और साइबेरियाई लोगों के विद्रोह को समर्थन दिया। यह ब्रिटेन के हित में नहीं था क्योंकि वह औटोमन साम्राज्य का विघटन नहीं चाहता था। फ्रांस भी नाखुश था। क्रूसेड के समय से ही फ्रांस को पूरब में इसाईयों के अधिकारों का संरक्षक माना जाता था। पंरतु अब रूसी जार परम्परागत या पूर्वी इसाई धर्म का पक्ष लेने लगा। बालकन क्षेत्र में इस धर्म के काफी अनुयाई थे। इस धार्मिक क्षेत्र पर पहले फ्रांसीसियों का प्रभाव था जिसे रूसी जार ने चुनौती दी थी।

फ्रांसीसी- प्रशन युद्ध के बाद जर्मनी यह सोच भी नहीं सकता था कि इस बुरी हार के बाद फ्रांस इससे जल्दी ही उबर भी पाएगा। परंतु फ्रांस ने ऐसा ही किया। उसने जर्मनी के हरजाने का भुगतान कर दिया। इसलिए जर्मनी को अपने आशानुरूप समय से पहले ही पेरिस से अपनी सेना हटानी पड़ी। उसे इस बात की जानकारी थी कि फ्रांस को आलस्स और लॉरेन प्रांतों को खोकर काफी सदमा पहुंचा था और यह मुद्दा भविष्य में दोनों शक्तियों के बीच टकराव का एक प्रमुख आधार बना रहा। इसके परिणामस्वरूप आनेवाले वर्षों में बिस्मार्क की कोशिश यह रही कि वह ब्रिटेन और फ्रांस का ध्यान यूरोपीय महाद्वीप से हटाकर अफ्रीका और अप्रत्यक्ष रूप में एशिया की ओर आकृष्ट करे।

1880 के दशक में अफ्रीका में फ्रांसीसी साम्राज्यवाद तेजी से फैला। 1881 में ट्युनिस पर कब्जा कर लिया गया। 1884 में मैडेगैसकर फ्रांसीसी नियंत्रण में आ गया। इसके बाद फ्रांस सहारा की ओर बढ़ना चाहता था इसके लिए उसे मोरक्को को अपने नियंत्रण में लेना पड़ता। परंतु जर्मनी और स्पेन की भी मोरक्को क्षेत्र में रुचि थी। सूडान में फ्रांस के प्रसार से वहां ब्रिटेन से उसका टकराव हुआ और नाइजर तथा फशोडा पर भी झगड़े हुए। इसके अलावा 1882 तक फ्रांस को ब्रिटेन के हक में मिस्र पर अपना नियंत्रण छोड़ना पड़ा।

यूरोप में केवल बालकन ही ऐसा क्षेत्र बचा था जहां आधिपत्य किया जा सकता था। बढ़ते राष्ट्रवादी आंदोलनों और तुर्की के लगातार होते पतन ने वहां नए अवसर प्रदान किए। रूस इस क्षेत्र पर आधिपत्य जमाने के लिए काफी उत्सुक था। बिस्मार्क को रूस के समर्थन की आवश्यकता थी इसलिए वह रूस का विरोध नहीं करना चाहता था।

1877 में रूस तथा तुर्की के बीच युद्ध हुआ और तुर्की की पराजय हुई। रूस ने कार, एरडेहन और एरजीरूम

के साथ-साथ अरमेनिया जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर कब्जा जमा लिया। रूसी तुर्की युद्ध की समाप्ति 1871 के सैनस्टिफैनो की संधि के साथ हुई। इसके बाद ब्रिटेन और रूस एक दूसरे के सामने युद्ध के लिए खड़े हो गए। ब्रिटिश युद्ध पोत को कौनसेंटटिनोपल की ओर रवाना होने का आदेश दिया गया और ब्रिटिश संसद ने डिजरेली के रूसी विरोधी प्रयत्नों के लिए 60 लाख पाउंड धन पारित किया। तुर्की अभियान के बाद रूसी सेना को कमजोर और नि:शक्त पाते हुए यदि जार अलेक्जेंडर II अपनी सेना को पीछे नहीं हटाता तो रूसी सेना की हार निश्चित थी। इसके बाद सैन स्टिफैनो की संधि को जून 1878 में बर्लिन में सभी प्रमुख यूरोपीय शक्तियों – ब्रिटेन, फ्रांस, तुर्की, रूस, इटली और जर्मनी – के एक सम्मेलन में पेश किया गया। रूस के आधिपत्य क्षेत्र को कम किया गया और बोस्निया तथा हर्जेगोविना पर आस्ट्रिया का नियंत्रण स्थापित कर दिया गया। ब्रिटेन को साइप्रस प्राप्त हुआ और फ्रांस को ट्युनिशिया के उत्तरी अफ्रीका क्षेत्र में मुक्त रूप से कार्य करने देने का वादा किया गया। हालांकि इस सम्मेलन में इटली और जर्मनी को कोई क्षेत्र प्राप्त नहीं हुआ। सम्मेलन में बिस्मार्क ने एक ईमानदार मध्यस्थ की भूमिका निभाई।

परंतु रूस और ब्रिटेन के बीच चल रहे टकराव को समाप्त करने के लिए यह काफी नहीं था। बेंजामिन डिजराइली या अर्ल ऑफ बेकांसफील्ड (जिस नाम से वह जाना जाता था) कट्टर रूसी विरोधी था। दूसरी ओर उसे तुर्की सुल्तान पर जरूरत से ज्यादा विश्वास था।

परंतु ब्रिटेन इससे भी ज्यादा चिंतित रूस के मध्य एशिया में विस्तार से था। 1807 के बाद रूस तुर्किस्तान क्षेत्र में तेजी से पैर फैला रहा था। पूर्वी तुर्किस्तान चीन का एक नाम मात्र का प्रांत था। इन क्षेत्रों से घुड़सवार डाकू इससे लगे रूसी प्रांतों में डाका डालते थे और रूस के सीमांत प्रांतों के राज्याध्यक्षों को बार-बार तुर्किस्तान में प्रवेश करके उन्हें दंडित करना पड़ता था। 1864 में ताशकंद रूसी अधिकार में आ गया। इसके बाद उन्होंने चंगेज खां और तैमूर के प्रसिद्ध शहर समरकंद पर कब्जा कर लिया। जल्द ही सम्पूर्ण पूर्वी तुर्किस्तान रूसी हाथों में आ गया। पश्चिमी क्षेत्र लम्बे समय तक विरोध करते रहे परंतु 1873 में खिवा के खान को जबरन मिला लिया गया। इससे रूसी प्रतिष्ठा काफी बढ़ी परंतु इससे रूस और ब्रिटेन एक दूसरे के आमने-सामने खड़े हो गए। ब्रिटेन को यह लगा कि इससे उसके सबसे महत्वपूर्ण उपनिवेश भारत के लिए खतरा उत्पन्न हो गया था। परंतु ब्रिटेन की तात्कालिक चिंता इस बात को लेकर थी कि रूस अफगानिस्तान को अपने कब्जे में लेने की कोशिश कर रहा था जो ब्रिटिश प्रभाव क्षेत्र के बीच में मध्यवर्ती राज्य की भूमिका अदा कर रहा था। 1885 में रूसी सेना ने अफगान क्षेत्र के एक हिस्से पर कब्जा जमा लिया। ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने संसद से 110 लाख पाउंड धन पारित करने को कहा ताकि रूस को आगे बढ़ने से रोका जा सके। परंतु एक बार फिर जार एलेक्जेंडर III ने अपने कदम पीछे खींचे और चीन की ओर विस्तार के लिए अपने कदम बढ़ाए।

24.4 प्रथम विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि बनाने वाले शक्ति समीकरण

इस अवधि में आस्ट्रिया-हंगरी का महत्व तेजी से कम हो रहा था। परंतु जर्मनी के लिए, खासतौर पर रूस के खिलाफ, यह एक स्वाभाविक मित्र था। ड्रेकेसरबंड के नाम से प्रसिद्ध तीन सम्राटों (रूस, जर्मनी और आस्ट्रिया-हंगरी) की संधि पर जून 1801 में हस्ताक्षर हुए और 1804 में इस संधि की अवधि बढ़ाई गई। परंतु यह संधि अन्तत: 1887 में टूट गई। जैसे-जैसे रूस और जर्मनी के बीच का मतभेद बढ़ा वैसे-वैसे आस्ट्रिया-हंगरी के साथ-साथ इटली भी जर्मनी के निकट आता गया। इस प्रकिया के परिणामस्वरूप 1882 में तिहरी संधि हुई।

1890 के दशक आते-आते रूस अकेला पड़ गया। फ्रांस की भी यही स्थिति थी। इसके कारण 1893 में दोनों के बीच दोहरी संधि हुई। इस प्रकार 1890 के दशक में दो प्रकार की संधियां कायम थीं। परंतु इसका अर्थ यह नहीं था कि यूरोपीय महादेश दो भागों में बंट गया था। आनेवाले वर्षों में कई अवसरों पर रूस ने जर्मनी और आस्ट्रिया के साथ सहयोग किया था और आस्ट्रिया तथा जर्मनी ने रूस और फ्रांस की मदद की थी।

केवल इंगलैंड ही अपने को अकेला महसूस कर रहा था। इसका कारण यह था कि फ्रांस तथा रूस के हित दुनिया के कई हिस्सों में (सूडान या फारस या अफगानिस्तान) ब्रिटेन के हितों से टकरा रहे थे और कभी-कभी

जर्मनी ने भी ब्रिटेन के युद्ध उद्देश्यों का विरोध करने में रूस और फ्रांस की मदद की थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में बर्लिन-बगदाद रेलवे के निर्माण की बात चल पड़ी और ऐसा लगा कि औटोमन साम्राज्य के संरक्षक के रूप में इंग्लैंड के स्थान पर जर्मनी अपना अधिकार जमाने के लिए पूरी तरह तैयार है।

ब्रिटेन ने यूरोप में अपने अलगाव को दूर करने के लिए 1898 में जर्मनी से समझौता करने का प्रयास किया परंतु जर्मनी ने इस दिशा में बहुत उत्साह नहीं दिखाया क्योंकि फ्रांसीसी-रूसी और ब्रिटिश गुटों के बीच उसकी स्थिति मजबूत थी और वह अपनी स्थिति नहीं बदलना चाहता था। 1901 में आंग्ल-जर्मन समझौते के लिए बातचीत सफल नहीं हुई क्योंकि जर्मनी सुदूर पूर्व में रूसी कब्जे के खिलाफ ब्रिटेन की सहायता करने के लिए तैयार नहीं था और इसी प्रकार ब्रिटेन पूर्वी यूरोप में रूस के खिलाफ जर्मनी को सहायता देने में ढील बरत रहा था।

सुदूर पूर्व में रूसी अभियान को रोकने के लिए 1902 में ब्रिटेन ने जापान के साथ संधि की। पंरतु यह इंग्लैंड की यूरोप में अलगाव की स्थिति को दूर करने के लिए काफी नहीं था। अतएव उसने फ्रांस की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाया। फ्रांस भी दोस्ती का हाथ बढ़ाने के पक्ष में था क्योंकि फसोदा घटना के बाद, जब रूसियों ने फ्रांस को समर्थन देने से इनकार कर दिया, रूस से उनका रिश्ता कमजोर हो गया था। सूडान स्थित फसोदा में 1898 में अंग्रेज और फ्रांसीसी सेना में संघर्ष हुआ। दोनों शक्तियां सूडान पर नियंत्रण स्थापित करना चाहती थीं। अन्तत: फ्रांसीसियों ने अपने पैर पीछे खींच लिए और ब्रिटेन ने इस क्षेत्र पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया।

1904 में एन्टेन्टे कॉर्डियाले अर्थात आंग्ल-फ्रांसीसी समझौते पर हस्ताक्षर हुआ। इससे उनके उपनिवेशों से संबंधित सभी मतभेदों को सुलझा लिया गया। फ्रांस ने मिस्र में अंग्रेजों के हितों को और इसके बदले में मोरक्को में ब्रिटेन ने फ्रांसीसी हितों को स्वीकार कर लिया गया। यह समझौता 'एक मित्रतापूर्ण आपसी समझ' थी कोई संधि नहीं। जर्मनी के आक्रामक रवैये(खासकर मोरक्को में) ने फ्रांस और ब्रिटेन को एक दूसरे के नजदीक ला दिया। 1906 में जर्मनी और फ्रांस युद्ध के लिए आमने सामने खड़े हो गए थे। इसी समय एलजेरिकास में एक अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन हुआ जिसमें मोरक्को की स्वतंत्रता को पुन: दृढ़ता से स्वीकार की गई। इससे यह मुद्दा सुलझ गया।

1905 में जापान के हाथों रूस की करारी हार हुई। इसका काफी व्यापक प्रभाव पड़ा और 1905 के बाद रूस ब्रिटेन के साथ अपने संबंधों को सुधारने में काफी तत्पर रहा। ब्रिटेन भी रूस के साथ अपने औपनिवेशिक मतभेदों को दूर करने का इच्छुक था। 1907 के आंग्ल-रूसी समझौते से अफगानिस्तान, फारस और तिब्बत पर इन दो शक्तियों की पुरानी शत्रुता दूर हो गई।

इस प्रकार जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी और इटली के त्रिपक्षीय संधि के खिलाफ ब्रिटेन, फ्रांस और रूस का ट्रिपल एन्टेन्टे (त्रिपक्षीय समझौता) कायम हुआ। परंतु अब बालकन आकर्षण का प्रमुख केंद्र बन गया था।

1908 में तुर्की में क्रांति की शुरुआत होने से मामले की शुरुआत हुई। सुल्तान अब्दुल हमीद II के भ्रष्ट और पतनशील शासन व्यवस्था और सुधार के लिए बार-बार वादा करने और मुकर जाने की प्रवृत्ति से ऊबकर 'युवा तुर्क' के नाम से प्रसिद्ध उदारवादी देशभक्तों ने सुल्तान के शासन को उखाड़ फेंका था। इन घटनाओं के फलस्वरूप आस्ट्रिया ने बोस्निया और हर्जेगोविना को अपने राज्य में मिलाने का निर्णय लिया जहां की प्रशासन व्यवस्था वह 1878 से चला रहा था। रूस ने इसका विरोध किया। उसने मांग की कि आस्ट्रिया की इस कार्यवाई को अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन के समक्ष रखा जाए। बोस्निया-हर्जेगोविना पर नजर टिकाए सर्बिया ने भी इस विरोध में रूस का साथ दिया। परंतु जर्मनी और आस्ट्रिया का मानना था कि जब तक बोस्निया हर्जेगोविना के आधिपत्य को मंजूरी नहीं दी जाती तब तक वे किसी भी प्रकार के सम्मेलन के लिए राजी नहीं होंगे। अन्तत: उन्हीं का मत स्वीकार किया गया क्योंकि जापान के हाथों हारने के बाद अब रूस आस्ट्रिया-हंगरी और जर्मनी से युद्ध करने की स्थिति में नहीं था। इस घटना से जर्मनी की बढ़ती शक्ति और ताकत का अंदाजा हुआ। हालांकि इस बार आस्ट्रिया सामने था और जर्मनी उसके पीछे खड़ा था। इस प्रवृत्ति का भविष्य में दूरगामी प्रभाव पड़ा।

बोस्निया संकट से तनाव का एक ऐसा सिलसिला बना जो प्रथम विश्वयुद्ध तक कायम रहा। रूस और सर्बिया अपमानित महसूस करने लगे। इटली भी अपमानित महसूस कर रहा था क्योंकि बोस्निया-हर्जेगोविना को

कब्जे में लेने से पहले आस्ट्रिया ने उससे परामर्श नहीं किया था। संभवत: इसी के परिणामस्वरूप 1909 में इटली ने रूस के साथ संधि की जिसमें उसने डारडानेल्स के जलडमरूमध में रूस के हितों को समर्थन देने का वादा किया जिसके बदले में रूस को त्रिपोली (लिबिया) में इटली के हितों को समर्थन देना था।

1911 में एक बार फिर से मोरक्को में संकट पैदा हो गया। मोरक्को में स्थानीय विद्रोह हुआ। फ्रांसीसी सेनाओं ने हस्तक्षेप किया। जर्मनी ने यह कहकर इसका विरोध किया कि यह मोरक्को की स्वतंत्रता का उल्लंघन था। उसने मोरक्को में जर्मन लोगों की रक्षा करने के लिए आगादीर नामक मोरक्को बंदरगाह पर पैंथर नाम का एक युद्धपोत भेजा। अन्तत: ब्रिटेन के प्रयास से जर्मनी को पीछे हटने के लिए मना लिया गया और संकट समाप्त हो गया। इस प्रकार यूरोप फिर एक बार युद्ध की तरफ उन्मुख था।

दूसरे मोरक्को संकट के दौरान ब्रिटेन को यह आशंका हुई कि जर्मनी मोरक्को में अपना नौसैनिक अड्डा स्थापित करना चाहता है जो ब्रिटेन के गिबरालटार स्थित अड्डे के लिए खतरा साबित हो सकता था। आंग्ल-जर्मन नौसैनिक प्रतिद्वंद्विता बहुत पहले ही शुरु हो चुकी थी। 1889 में इंग्लैंड ने 'द्वि-शक्ति मानदंड' अपनाया था जिसके तहत अंग्रेजों को दो मजबूत शक्तियों की मिली जुली नौसेना से 10 % अधिक मजबूत नौसैनिक बेड़ा बनाकर रखना था। 1898 में जर्मनी ने अपनी नौसेना में विस्तार किया जिसके कारण 1914 तक आते-आते जर्मनी विश्व की दूसरी मजबूत नौसैनिक शक्ति बन गई। यह बात इंग्लैंड को पसंद नहीं आई जिसका मानना था कि जर्मनी को नौसेना की जरूरत ही नहीं थी क्योंकि इसके पास पहले से ही एक शक्तिशाली थलसेना मौजूद थी। एक नौसेना के निर्माण का उद्‌देश्य भविष्य में ब्रिटेन की नौसेना की सर्वोच्चता को चुनौती देना था। कम से कम दो बार, पहली बार 1908 में और 1912 में, ब्रिटेन ने जर्मनी से अनुरोध किया कि वह अपना नौसैनिक विस्तार धीमा करे परंतु जर्मनी ने उसकी बात अनसुनी कर दी। इस नौसैनिक प्रतिद्वंद्विता के कारण जर्मनी और ब्रिटेन के संबंधों में और भी कड़वाहट पैदा हो गई।

अभी तक साम्राज्यवादी दौड़ में इटली की भूमिका पर हमने विस्तार से चर्चा नहीं की है। इटली भी उपनिवेशों के लिए इच्छुक था। वह औटोमन साम्राज्य के उत्तरी अफ्रीका के उपनिवेशों को हासिल करना चाहता था। अपेक्षाकृत कम ताकत होने के कारण इसे अपने लक्ष्य में सफलता नहीं मिली। 1912 में इटली ने अचानक ट्रिपोली पर कब्जा जमा लिया। इसने इस अभियान के लिए सभी बड़ी शक्तियों से अनुमति ले ली थी और इस प्रकार इस बार मोरक्को जैसा कोई बड़ा संकट नहीं उभरा। परंतु त्रिपोली पर किए गए कब्जे का परिणाम बहुत ही दूरगामी तथा आधारभूत सिद्ध हुआ। यदि औटोमन साम्राज्य से त्रिपोली छीना जा सकता था तो फिर सर्बिया और ग्रीस भी इसके क्षेत्रों को हड़पने का प्रयत्न क्यों नहीं कर सकते थे ? अक्टूबर 1912 में ग्रीस और सर्बिया ने औटोमन साम्राज्य पर आक्रमण किया और इसे बुरी तरह पराजित किया। मई 1913 की लंदन की संधि के तहत औटोमन साम्राज्य को अपने सारे यूरोपीय क्षेत्र छोड़ने पड़े। अब डारडेनेल्स के जलडमरूमध्य से लगे इलाके ही उसके पास बचे रह गए।

यह पहला बालकन युद्ध था। इसके एक महीने के भीतर दूसरा बालकन युद्ध हुआ। परंतु इस बार युद्ध में जीते गए हिस्सों के बंटवारे को लेकर संघर्ष हुआ। सर्बिया एड्रियाटिक की ओर रास्ता चाहता था जिसे आस्ट्रिया और इटली देने को तैयार नहीं थे। इसके बाद मैसेडोनिया में कुछ क्षेत्रों को लेकर बलगारिया और सर्बिया के बीच तनाव बढ़ गया। इस युद्ध में बलगारिया को पीछे हटना पड़ा और मैसेडोनिया का एक बड़ा हिस्सा ग्रीस और सर्बिया को देना पड़ा। सार्बिया की बढ़ती शक्ति और आक्रामक रुख भी प्रथम विश्वयुद्ध का माहौल बनाने में उत्तरदायी थे। यह छोटा सा देश अपना क्षेत्र बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध था और यह मैसेडोनियन क्षेत्रों से संतुष्ट नहीं था। इसने अब अल्बेनियाई क्षेत्रों पर भी अपना दावा पेश किया। इस प्रयत्न में रूस ने सर्बिया का समर्थन किया। अस्ट्रिया ने जमकर इसका विरोध किया। परंतु जर्मनी ने अस्ट्रिया को रोक दिया। इंग्लैंड और इटली अल्बेनिया की आजादी के पक्ष में थे। अन्तत: रूस ने सर्बिया को दिया गया अपना समर्थन वापस ले लिया और यह संकट टल गया। परंतु सर्बिया का आस्ट्रिया के खिलाफ रोष बना रहा।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि 28 जून 1914 को आस्ट्रिया गद्‌दी के उत्तराधिकारी आर्कड्यूक फ्रांसेस फर्डिनान्ड की बोस्निया की राजधानी साराजेवो में की गई हत्या प्रथम विश्व युद्ध का तात्कालिक कारण बना। 'ब्लैक हैन्ड' के नाम से जाने जानेवाले सर्बिया राष्ट्रवादियों के एक गुप्त दल को हत्या के लिए जिम्मेदार माना गया। हालांकि इस हत्या में सर्बियाई सरकार का कोई हाथ नहीं था परंतु इस हत्या के लिए आस्ट्रिया सर्बिया

को दंडित करने के लिए कटिबद्ध था। 28 अगस्त 1914 को इसने सर्बिया से कूटनीतिक संबंध तोड़ दिया और युद्ध की घोषणा कर दी। रूस ने सर्बिया का साथ देने की घोषणा की और आस्ट्रिया के खिलाफ युद्ध की तैयारी करने लगा। यह देखकर जर्मनी ने रूस को युद्ध की तैयारी रोकने का आदेश दिया। जार ने जब जर्मनी का आदेश मानने से इनकार किया तो जर्मनी ने 1 अगस्त 1914 को रूस पर युद्ध की घोषणा कर दी। इसके दो दिन बाद फ्रांस पर युद्ध की घोषणा कर दी गई। फ्रांस और बेल्जियम की सीमा पर आक्रमण करने की योजना बनाई गई। जर्मनी के बेल्जियम पर आक्रमण करते ही ब्रिटेन भी युद्ध में शामिल हो गया। इस प्रकार चौंतीस सालों से जिस यूरोपीय संघर्ष को रोकने के लिए तरह-तरह की सावधानियां बरती जा रही थी,वे सारे प्रयत्न नाकाम रहे। यह बड़ी ही विडम्बना है कि यूरोप के सबसे छोटे और नए देश सर्बिया ने प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत की। परंतु इतिहास इस बात का साक्षी है कि तात्कालिक कारण हमेशा अन्य गहरे कारणों का एक प्रतिबिंब मात्र होता है। सर्बिया से संबंधित घटना ने रूस और आस्ट्रिया की पुरानी दुश्मनी को पूर्ण रूप से युद्ध में परिवर्तित करने में सहायता प्रदान की। आस्ट्रिया के साथ जर्मनी था और रूस के साथ फ्रांस। जैसे ही फ्रांस पर आक्रमण का खतरा मंडराया वैसे ही ब्रिटेन ने अपने को असुरक्षित महसूस किया। इस प्रकार फ्रांस की रक्षा के लिए उसे आगे आना पड़ा। प्रथम विश्व युद्ध यूरोप में लड़ा गया परंतु यह युद्ध पूरे विश्व में फैल गया। चीन से लेकर भारत, मध्य एशिया, फारस, ग्रीस, बालकन और अफ्रीका तक यह युद्ध फैल गया। युद्ध के बाद हुए शांति समझौते में इन सभी क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ा।

बोध प्रश्न 1

1) गैलेघर और रॉबिन्स द्वारा प्रतिपादित साम्राज्यवाद के सिद्धांत वी.आई. लेनिन के सिद्धांत से किस प्रकार अलग थे ?

....

....

....

....

....

....

2) 19वीं शताब्दी में रूसी के विस्तार पर 100 शब्द लिखिए।

....

....

....

....

....

....

3) 20वीं शताब्दी के आरंभ में फ्रांस ने अपने परम्परागत शत्रु ब्रिटेन से दोस्ती क्यों की ?

....

....

....

....

....

24.5 सारांश

साम्राज्यवाद के सिद्धांतों का निरूपण करने वाले अधिकांश विद्वानों ने इस दौर में मुख्य रूप से विश्व पर यूरोपीय आधिपत्य की चर्चा की है। बाद में 20 वीं शताब्दी में अमेरिका और जापान भी इस दौड़ में शामिल हुए। परंतु 1914-1918 में प्रथम विश्व युद्ध के समय तक यूरोपीय देश प्रमुख औपनिवेशिक शक्तियां थीं। सबसे पहले स्पेन और पुर्तगाल ने दुनिया के विभिन्न देशों में उपनिवेश स्थापित किए। अपनी श्रेष्ठ आर्थिक और सैनिक शक्ति के बल पर बाद में ब्रिटेन और फ्रांस ने उन्हें हटाकर अपना पैर जमाया। रूस ने अपने बल पर आसपास के क्षेत्रों पर कब्जा जमाया और यूरोप की एक बड़ी शक्ति बन गया। जर्मनी का प्रवेश थोड़ी देर से हुआ। परंतु वहां औद्योगीकरण इतनी तेजी से हुआ कि उसने एक बड़ी शक्ति का रूप ले लिया। परंतु इस समय तक औपनिवेशिक विस्तार की संभावनाएं काफी कम हो चुकी थीं। हालांकि अफ्रीका में उसे हिस्सा मिला था परंतु इससे वह संतुष्ट नहीं था और इसी असंतुष्टि के कारण पूरी दुनिया में प्रतिस्पर्द्धा का माहौल बन गया और कई राजनैतिक संधियां हुई। राजनैतिक और आर्थिक महत्वाकांक्षाओं पर आधारित इन संधियों ने अन्ततः प्रथम विश्व युद्ध को जन्म दिया।

24.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 24.2

2) देखिए भाग 24.3

3) देखिए भाग 24.4

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

अगाथा रैम : *यूरोप इन द नाइनटीन्थ सेन्चुरी,* 1789-1905

जेम्स जौल : *यूरोप सिन्स* 1870

डेविड थॉमसन : *यूरोप सिन्स नेपोलियन*

ओवन ऐंड सटक्लिफ (सं.) : *स्टडिज इन द थ्योरी आफ इम्पेरियलिज्म*